International Journal of Applied Research 2021; 7(11): 174-175

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(11): 174-175
www.allresearchjournal.com
Received: 14-09-2021
Accepted: 20-10-2021

डॉ. अमित सिंह परिहार
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अमित सिंह परिहार
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
उत्तर प्रदेश, भारत

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की सांस्कृतिक समालोचना और साहित्य में सत्ता विमर्श

डॉ. अमित सिंह परिहार

प्रस्तावना

साहित्य के सत्य के बारे में लिखते हुए मार्क्सवादी परम्परा में प्रतिष्ठित आलोचक निकोलाई अलेक्जान्द्रोविच दोब्रोल्युबोव का कथन है कि कलाकार सत्य का पूर्ण अवगाहन करने के लिए कलाकार समूची दुनिया के बारे में अपने सरल, शिशुसुलभ, प्रत्यक्ष दृष्टिकोण को अक्षुण्ण रखे, या फिर (चूँकि जीवन में यह पूर्णतया असंभव है) विवेक से काम लेने वाले लोगों द्वारा विकसित सामान्य विचारों को आत्मसात करके जितना भी सम्भव हो अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाए। [1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ऐसे रचनाकार हैं जिनके पास बालसुलभ सहज दृष्टि है और ज्ञान के विविध क्षेत्रों में गहरी पैठ भी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी और बाङ.ग्ला साहित्य के मर्मज्ञ पंडित साथ ही इतिहास, धर्म, पुराण, ज्योतिषशास्त्र, मनोविज्ञान, जीव–विज्ञान के गंभीर अध्येयता भी। किन्तु वह ज्ञान के बोझ बन जाने को लेकर सचेत हैं– ''पंडिताई भी एक बोझ है– जितनी ही भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबोती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है।'' [13अ]

आचार्य द्विवेदी की सांस्कृतिक समालोचना का विकास पंडिताई को जीवन का अंग बनाने के क्रम में हुआ है। ऐसा इसलिये कि उन्हें मनुष्य जीवन में किसी किस्म का आधिपत्य स्वीकार्य नहीं था, चाहे वह ज्ञान का क्यों न हो। ''डरना किसी से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं, गुरू से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं।'' [2] वह साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने के पक्षपाती थे। वह जान रहे थे कि साहित्य संस्कृति का वाहक है और हमारी संस्कृति की जो स्थापित धारा है वह सत्ता–प्रतिष्ठानों–मठों द्वारा निर्देशित होती आयी है और साहित्य को भी इस तंत्र द्वारा निर्धारित मानकों के आलोक में परखा गया। जिसमें साहित्य की अधिक मानवतावादी समृद्ध धारा का वाजिब मूल्यांकन नहीं हो सका। इस परिप्रेक्ष्य में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने लेखन को सघन सांस्कृतिक समालोचना से सम्बद्धकर साहित्य और संस्कृति के छूट गए हिस्से को आलोकित करते हैं। इसके साथ ही वह पंडिताई और शास्त्र द्वारा स्थापित हो रहे शक्ति–तंत्र को छिन्न–भिन्न कर देते हैं। उनके लेखन में हमारी साहित्यिक परंपरा में विद्यमान 'प्रतिरोध की परंपरा' अपने पूरे ओज के साथ सामने आती है। जिसके केंद्र में हैं 'कबीर'। द्विवेदी 'मामूली चीजों' के सहारे ही गंभीर–से–गंभीर बात का विश्लेषण करते हैं, चिर–परचित अपने आस–पास की चीजें।

ज्ञान का ऐसा एक कतरा भी नहीं जो ज्ञान की मठाधीसी का, उसके आभिजात्य का आधार बन सके। यथा–

1. ज्ञान को सहज बनाना बहुत आवश्यक है। यदि आपके लेखन में आपका सुचिन्तित मन उसी प्रकार सहज गति से आ रहा है जिस प्रकार माता के दूध में पौष्टिक तत्व अनायास आ जाते हैं, तो कोई परवाह नहीं।'' [3]
2. मेरे पास बुद्धि परीक्षा लेने आएगी तो उसे गाड़ी खींचकर दीन–दुखियों तक खाद्य पहुँचाने को कहूँगा। इसी में उसकी बुद्धि की परीक्षा हो जाएगी। माँ, जो दीन–दुखियों की सेवा नहीं कर सकता, वह क्या बुद्धि परीक्षा करेगा। मैं अब थोड़ा–थोड़ा रहस्य समझने लगा हूँ। कोरा वाग्–वितंडा ज्ञान नहीं है। [4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेखन में जिन चरित्रों–पात्रों को केन्द्रीयता दी गई हैं यदि उनकी वर्गीय परिस्थितियों को (जाँचा) विश्लेषित किया जाए तो अधिकांश निम्नवर्गीय जीवन स्थितियों के प्रतिनिधि पात्र हैं। बौद्ध–सिद्ध–नाथ–संत साहित्य के रचयिता हों या फिर मनुष्य जीवन के समानधर्मा प्रकृति के रूपक अशोक के फूल, देवदारू, कुटज सभी निम्न जीवन स्थितियों से आते हैं किन्तु जीवन की अदम्य जिजीविषा के साथ। उनके प्रसिद्ध उपन्यास–नायक बाणभट्ट जाति से तो शुद्ध ब्राहमण है किन्तु जीवन वही निम्नवर्गीय। यह अनायास नहीं है कि साहित्य में अपने प्रिय पात्र के बारे में पूछे जाने पर प्रेमचंद के रंगभूमि के 'सूरदास उर्फ सूरे को बताते हैं। [5] इस सभी में जो साझा है वह है 'समाज और संस्कृति' की वर्चस्ववादी धारा के विरूद्ध 'प्रतिरोध की चेतना' और जीवन के प्रति सघन राग।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जान रहे थे सभ्यता के विकास के क्रम में समाज के आभिजात्य वर्ग ने 'ज्ञान–पाखण्ड' को श्रेष्ठता का माध्यम बनाकर सांस्कृतिक श्रेष्ठता के कुछ स्वहितपोषी मानक निर्मित कर, समाज में अपना आधिपत्य बनाए रखा है। इन प्रयत्नों की ऐतिहासिक क्रमबद्धता है। आचार्य द्विवेदी आधिपत्य के इस तिलिस्म को तोड़ना चाहते थे जिसके लिए अपना नायक कबीर को चुनते हैं फिर कबीर को

ऐतिहासिक और वर्तमान की स्थितियों से संबद्ध कर देते हैं। यही वजह है कि आचार्य द्विवेदी अपनी सांस्कृतिक समाजशास्त्रीय और मानवतापरक आलोचना–दृष्टि के माध्यम से साहित्य के विकास को टुकड़ों में विभाजित न कर ऐतिहासिक क्रमबद्धता में रखकर मूल्यांकित करते हैं। उनके लिए साहित्य ''पुस्तकों उनके लेखकों और कवियों के उद्‌भव और विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादि काल–प्रवाह में निरंतर प्रवाहमान जीवित मानव–सम्मान की ही विकास कथा है। ग्रंथ और ग्रंथकार, संप्रदाय और उनके आचार्य उस परम शक्तिशाली प्राणधारा की ओर सिर्फ इशारा भर करते हैं। [6]

यह भी सच है कि ग्रंथकार और आचार्य प्रायः अपने दौर के स्वीकृत की स्थापना को ही पुनः प्रतिष्ठित करने में संलग्न रहते हैं। यह स्वीकृत मूल्य अंततः सत्ता के मूल्य होते हैं जबकि उसी समय और समाज में उपस्थित अधिक मूल्यवान और जरूरी विचार हाशिए में डाल दिए जाते हैं। आचार्य द्विवेदी अपनी सांस्कृतिक समालोचना द्वारा इन्हीं छूटे हुए हाशिए के मूल्यों, विचार–प्रणाली को समाज में स्थापित करते हैं। प्रमुखतया–

1. सगुण के बरक्स निर्गुण विचार–प्रणाली–''भगवान् के नाम पर पाखण्ड रखने वालों को उन्होंने कभी छूट नहीं दी, दूसरों को गुमराह बनाने वालों को उन्होंने कभी तरह देना उचित नहीं समझा। ऐसे अवसरों पर वे उग्र थे, कठोर थे और आक्रामक थे।... उनका मन जिस प्रेमरूपी मदिरा से मतवाला बना हुआ था वह ज्ञान के गुण से तैयार की गई थी। [7]
2. शास्त्र–सत्ता के बरक्स लोक–सत्ता– ''जब कभी लोक–परंपरा के साथ किसी पोथ्ली का विरोध हो जाता है, तो मेरे मन में कुछ नवीन रहस्य पाने की आशा उमड़ उठती है। सब समय नई बात सूझती नहीं, पर घर में नहीं मानता। कभी–कभी तो बड़े–बड़े पंण्डितों के क्रोध से डरता हूँ, पर मन से यह बात किसी प्रकार नहीं जाती की पंडित की बात की संगति लोक–परम्परा से ही लग सकती है। [8]
3. पाश्चात्य के बरक्स भारतीय मूल्यबोध– ''संतों और भक्तों की वाणी का आज भी उपयोग है। मनुष्य पर मशीन के प्रभुत्व का प्रत्याख्यान करती है और इस बात पर जोर देती है कि जड़ोन्मुखी यांत्रिकता नहीं, बल्कि चिन्मुखी मानवता बड़ी चीज हैं।'' [9]
4. पुरूष के बरक्स स्त्री– ''केवल पुरूष–शक्ति की पूजा ही क्या स्त्री धर्म हैं? सिंहवाहिनी की उपासना का मतलब क्या इतना ही है कि महिष–मर्दन का काम पुरूषों पर छोड़कर स्त्रियाँ उनकी आरती उतारा करें? स्त्रियों का धर्म आगे बढ़कर अधर्माचार का विध्वंस करना नहीं हैं? स्त्री को पुरूष की सह–धर्मिणी बनना पड़ता है। यह कैसा सहधर्म है कि पुरूष युद्ध करे और स्त्रियाँ उसकी आरती उतारती रहें।'' [10]

किन्तु वह इनमें से एक के बरक्स दूजे का आधिपत्य नहीं चाहते बल्कि वह इन युग्मों के द्वन्द्व और तनाव से विकसित बेहतर सभ्यता–संस्कृति का निर्माण चाहते हैं– ''संतुलित दृष्टि सत्यान्वेषी की दृष्टि है। एक ओर जहाँ वह सत्य की समग्र मूर्ति को देखने का प्रयास करती है, वहीं दूसरी ओर वह सदा अपने को सुधारने और शुद्ध करते रहने को प्रस्तुत करती है। वह सभी प्रकार के दुराग्रह और पूर्वाग्रह से मुक्त रहने की ओर सब तरह से सही विचारों को ग्रहण करने की दृष्टि है। [11]

आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की चाहे किसी विधा पर लेखनी चलाई, चाहे वह आलोचना–कर्म हो, इतिहास लेखन हो, उपन्यास या निबंध या फिर शोध ही क्यों न हो, सबमें समाज के विविध पक्षों की सांस्कृतिक समालोचना दर्ज हो गई है। अंततः वह अपने लेखन के द्वारा समाज में परंपरा की वर्चस्ववादी धारा के विरूद्ध अनसुनी रह गई आवाजों को अन्वेषित–प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इसीलिए उनके यहाँ लौकिक कथाएं, बौद्ध–नाथ–सिद्धों का रचनाकर्म, संत–साहित्य के साथ बाणभट्ट, नउनिया, देवदारू और कुटज अपनी संपूर्ण छवियों के साथ स्थान पाते हैं।

संदर्भ

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की मार्क्सवादी परंपराः संपा० डॉ० नगेन्द्र, डॉ० मक्खनलाल शर्मा, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ०...?
   1. अ अशोक के फूलः संकलित निबंध, संपा० नामवर सिंह, पृ० 14
2. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 130
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य की साधना, मोनोग्राफ, साहित्य अकादेमी, पृ० 81
4. अनामदास का पोथा, पृ० 89
5. दिनमान, जून, 1979, नामवर सिंह से बातचीत पर आधारित
6. हजारीप्रसाद द्विवेदीः 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है', संकलित निबंध, संपा० नामवर सिंह, पृ० 84
7. हजारीप्रसाद द्विवेदीः 'कबीर' राजकमल प्रकाश, 1998
8. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली–9, पृ० 47
9. हजारीप्रसाद द्विवेदीः सहज–साधना (नागपुर में दिये गए भाषणों का संग्रह)
10. पुनर्नवा, पृ० 41
11. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– 10, पृ० 142